ISSN No. 2349-4654
नाद – नर्तन जर्नल ऑफ डांस एण्ड म्यूजिक
वर्ष : 1, अंक : 1, नवम्बर 2014

कला : संस्कृति एवं परंपरा

प्रो. गौरांग भावसार
वाद्य विभाग (तबला), फेकल्टी ऑफ परफोर्मिंग आर्ट्स,
एम. एस. यूनिवर्सिटी ऑफ बड़ौदा

सार-संक्षेप

कला शब्द संस्कृत भाषा के 'कल्' धातु से बना हुआ है। जिसका अर्थ है ज्ञान अथवा जानना। समान्यत: कला अर्थात् चातुर्य या चातुर्य से करने वाला कार्य। कला मानव की चिर संगिनी है। जबसे पृथ्वी पर मनुष्य का अवतरण हुआ, तब से हीं कला का उद्‌भव हुआ है। मानवीय विकास की मूल प्रक्रियाओं के साथ-साथ कला का भी विकास हुआ और कला ही संस्कृति को आगे बढ़ाने वाला महत्वपूर्ण अंग भी बना। संस्कृति को समृद्ध बनाने के लिए कला का होना अनिवार्य है। मानव विचारशील प्राणी होने के कारण आदिकाल से आज तक कला का उपासक रहा है। मानव जीवन और कला एक-दूसरे के पूरक अंग है। यदि मानव को कला का स्पर्श नहीं मिला होता तो समाज जीवन में अनेक विकृतिओं का प्रवेश होता। परिणाम स्वरूप मानव का जीवन रसहीन, आनंद रहित और बोझ रूप होकर दु:खी रहता। किन्तु दुनिया की जिन-जिन प्रजाओं ने कला की खेवना की है उन्ही की ही संस्कृतियाँ विश्व में महानतम रही है। कला एक ऐसी मानव वृत्ति है की जो प्रत्येक मानव में होती है। जीवन के प्रत्येक प्रसंगों में कला का व्यवहार होता है। व्यक्ति और समाज जीवन में कला अनादिकाल से महान प्रेरणा बनी रही है। मानव ने समय-समय पर सुंदर कला कृतिओं का सर्जन करके युगांतरों तक का अर्मत्व प्राप्त किया है। कला अर्थात् जिसे देखते, सुनते या सर्जन करने से ह्रदय का आनंद प्राप्त होता है। भारतीय कला भारत वर्ष के आचार-विचार, कर्म-धर्म, ज्ञान-तत्वज्ञान और संस्कृति-संस्कार का दर्पण है। भारतीय कला का तिथि क्रम महाविस्तृत है। इसका आरंभ सिंधु उपत्यका में तृतीय सहस्त्राब्दि ईसवी पूर्व से होता है और लगभग पाँच सहस्त्र वर्षों तक इसका इतिहास पाया जाता है। प्रस्तुत पत्र में भारतीय सौंदर्यशास्त्र मानव जीवन के उपयोगी विविध चौसठ प्रकारों की कलाओं का वर्णन एवं उपयोगिता प्रस्तुत की गई है।

शोध-पत्र

कला क्या है? इस प्रश्न का उत्तर अनेक मतमतान्तरों की उलझनों से भरा है। कला का जन्म कब, कहाँ और कैसे हुआ यह कहना बड़ा मुश्किल है। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है की मनुष्य की सौंदर्यप्रियता ने कला को जन्म दिया। यह सर्वमान्य सिद्धांत है। मनुष्य ने इस धरा पर जन्म लिया तभी से कला का जन्म हुआ। दुनिया भर में पाये जाने वाले गुफा चित्र इस बात के साक्षी हैं की मनुष्य जब घोर अविकसित अवस्था में था तब भी वह कला के द्वारा अपने मनोभावों को प्रदर्शित करने की क्षमता रखता था। भले ही उसने इसके लिए कन्दराओं की ऊबड़-खाबड़ दीवारों पर चित्रांकन किया हो परंतु कला के प्रति अनुराग था इस में कोई संदेह नहीं। आज दुनिया भर में कला संस्कृति एवं परंपराओं का इतना विशाल क्षेत्र फैल गया है की उन सबका ज्ञान अर्जित करना असंभव नहीं है, किन्तु मुश्किल अवश्य है।

कला शब्द संस्कृत भाषा के 'कल्' धातु से बना हुआ है। जिसका अर्थ है ज्ञान अथवा जानना। समान्यत: कला अर्थात् चातुर्य या चातुर्य से करने वाला कार्य। अंग्रेजी में कला शब्द के लिए 'ART' शब्द का प्रयोग होता है। यह शब्द लेटिन ARS शब्द से बना है। जिसका अर्थ है 'प्राप्त करना' या 'साक्षर होना।' संस्कृत में कहा है की—''कल्यते वा ज्ञायते इति कला।'' अर्थात् जिनके द्वारा हम कुछ प्राप्त करते हैं, उसे कला कहते हैं। काला में कुछ ऐसी विशेषता है की जिससे उसकी लोकप्रियता बढ़ती ही रही है। कला के द्वारा प्रत्येक देश, सभ्य समाज और संस्कृति की उच्चता का मापदंड मिलता है। कला मानव की चिर संगिनी है। जबसे पृथ्वी पर मनुष्य का अवतरण हुआ, तब से हीं कला का उद्‌भव हुआ है। मानवीय विकास की मूल प्रक्रियाओं के साथ-साथ कला का भी विकास हुआ और कला ही संस्कृति को आगे बढ़ाने वाला महत्वपूर्ण अंग भी बना। संस्कृति को समृद्ध बनाने के लिए कला का होना अनिवार्य है। क्योंकि कला साधना ही संस्कृति के विकास का आधार विचार है, और विचार ही कला का प्राणतत्व है। मानव विचारशील प्राणी होने के कारण आदिकाल से आज तक कला का उपासक रहा है। मानव जीवन और कला एक-दूसरे के पूरक अंग है। यदि मानव को कला का स्पर्श नहीं मिला होता तो समाज जीवन में अनेक विकृतिओं का प्रवेश होता। परिणामस्वरूप मानव का जीवन रसहीन, आनंद रहित और बोझ रूप होकर दु:खी रहता। किन्तु दुनिया की जिन-जिन प्रजाओं ने कला की खेवना की है उन्ही की ही संस्कृतिओं विश्व में महानतम रही है।

थियोफ़ील गोटियर कला के महत्व को इस प्रकार से कहते हैं—''सभी वस्तुएँ नष्ट हो जाती है, केवल कला ही जीवित रहती है। नगर विध्वंश हो जाता है किन्तु मूर्ति नहीं।''[1]

रवीन्द्रनाथ टैगोर तो कला को मानव कल्याण से निरूपित करते हैं उनके अनुसार—''कला का अंत कभी नहीं होता है। कला निरंतर विविध स्वरूपों में अखंडित रहती है, और लोक कल्याण की भावना से परिपूर्ण होकर मानव मित्र के रूप में अपना दायित्व निभाती है। मानव हृदय की भावनाओं की अभिव्यक्ति ही कला है। जो सत् और सुंदर के रूप में हरेक मानव मन में प्रज्वलित है।''[2]

जहोन रस्किन कला को इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं—''प्रत्येक महान कला ईश्वरीय कृति के जैसी मानवीय आह्लाद की अभिव्यक्ति है।''[3]

कला की परिभाषा सिर्फ चित्र, शिल्प, शोभा या जवेरात में बंधी हुई नहीं है। किन्तु यह एक ऐसी मानव वृत्ति है की जो प्रत्येक मानव में होती है। जीवन के प्रत्येक प्रसंगों में कला का व्यवहार होता है। व्यक्ति और समाज जीवन में कला अनादिकाल से महान प्रेरणा बनी रही है। मानव ने समय-समय पर सुंदर कला कृतियों का सर्जन करके युगांतरों तक का अमरत्व प्राप्त किया है। कला अर्थात् जिसे देखते, सुनते या सर्जन करने से हृदय का आनंद प्राप्त होता है।

जिस प्रकार यह पाग्चभौतिक मानव तथा पार्थिव संसार उस अनन्त ज्योति पुंज के प्रकाश से प्रकाशित है, उसी प्रकार अपार्थिव (दिव्य) लोक भी उस अनंत के भास्वर प्रकाशपुंज से आलोकित है। कलाकार का हृदय सूर्यकांत समान होता है। जिस प्रकार सूर्यकांत मणि उस अनंत ज्योति को अपने अंदर धारण करके फिर उसे बाहर उगल देता है ठीक उसी प्रकार 'कलाकार' भौतिक जगत् को अपने हृदय-मणि द्वारा कला के रूप में उद्भासित करता है। इस प्रयास में कलाकार कितना सफल होता है यह उसकी उद्वमन-शक्ति पर निर्भर करता है। मणि की चमक, उसका तेज, उसका मूल्य तथा पानी(लुआब) उसकी परावर्तन-सामर्थ्य पर निर्भर करता है। इस प्रक्रिया में ज्योतिदात्री महाशक्ति का कोई दोष नहीं है। जो मणि जितना स्वयं को मिटाकर विराट्-ज्योति में विलीन होकर एकरस हो जाएगा, वह उतना ही निर्मल होगा तथा अपनी निर्मलता के परिमाण के अनुपात से ही वह विराट् ज्योति को अभिव्यक्त करने में सफल होगा। बिना इस तल्लीनता तथा आत्मविस्मृति के कोई भी व्यक्ति कलाकार हो ही नहीं सकता। कला का अंतिम मूल्य और उद्देश्य परमानंद अथवा परममंगल की उपलब्धि है। इस परमानंद अथवा परममंगल की उपलब्धि का नियम ही यह है की वह कलाकार से एक अति महान् मूल्य चाहता है। यह मूल्य है आत्मोत्सर्ग अथवा आत्मसमर्पण।

कला उस प्रसव-पीड़ा, उस कठोर साधना का नाम है जिसके द्वारा लघु आत्मा परमात्मा को खोजने का प्रयास करती है। और जब इस आत्मोसर्ग की शक्ति अथवा क्षमता कलाकार की आत्मा में आ जाती है, अथवा तो यों कहें की कलाकार का हृदय-मंदिर उस ज्योति को वहन करने के लिए पूर्णरूप से निर्मल हो जाता है तब उसके भीतर एक प्रकार का गौरवभाव उत्पन्न होता है। उस स्थिति में कलाकार को यह अनुभव होता है की वह परमेश्वर से पृथक नहीं, बल्कि उसी महोदधि की एक बूँद है, उसी वीरट् ज्योति की एक नन्ही सी लौ है—

''तस्य भासा सर्वमिदं विभाती।''

इस स्थिति में पहुँचकर कलाकार के हृदय में एक अनिर्वचनीय गौरव एवं आनंदासव भर उठता है। उसे अपनी लघुता पर भी गर्व होने लगता है। वास्तुत: कलाकार किसी नूतन सृष्टि का निर्माण नहीं करता। वह केवल ब्रह्माण्ड संगीत में अपनी लघु वीणा की झनकार को इस प्रकार विलीन कर देता है की उसका स्वर उस ब्रह्माण्डिय स्वर में लीन होकर एकरस हो जाय और मानो उसी के साथ ताल देने लगे। परम कलाकार ब्रह्माण्ड कवि की यह काव्यकला, उसका चिरन्तर संगीत, उस नटराज का यह ताण्डव निर्विकार भी है और निराकार भी है। उस निराकार को साकार, अवरण से सवरण बनाने तथा उस असीम का ससीम से, पार्थिव का अपार्थिव से मेल कराने एवं जड़ का चेतन के साथ संबंध जोड़ने की सफल साधना का नाम कला है। यही कला की सच्ची परिभाषा है। मानव की पाँच इन्द्रियों की विषय भिन्न-भिन्न हैं। उन्हीं के अनुकूल उस एकरस ब्रह्माण्ड कला की अभिव्यक्ति भिन्न-भिन्न रूपों और रसों द्वारा होती है। इसी कारण तो वास्तविक कला का लक्षण यह है की वह ससीम होते हुए भी असीम की मूलभूत अनन्त शक्ति की द्योतक हो एवं सान्त को अनन्त से और अनन्त को सान्त मिला देने की शक्ति उसमें निहित हो।

कह सकते हैं की कला का उद्गम सौंदर्य की मूलभूत प्रेरणा से हुआ है। प्रकृति के रमणीय दृश्यों का निर्माण हम भी करें एसी इच्छा मनुष्यों के मन में जागृत हई और मानव ने अनेक शिल्पगत तथा रचनात्मक प्रवृत्तिओं के फलत: अनेक शिल्प और कौशल्यों को जन्म दिया ऐसा कहा जाता है की जब अदृश्य, अव्यक्त और अध्यात्मिक अनुभूतिओं को दृश्य के माध्यम से व्यक्त करने को कला कहते है।

विश्रानिर्यत्र संभोगे सा कला ना कला मता।
लियते परमानन्दे ययात्मा सा कला मता।।[4]

अर्थात् की कला का लक्ष कला कभी भी नहीं है; किन्तु परमतत्व के प्रति उन्मुखीकरण या आत्मा स्वरूप साक्षात्कार ही कला का लक्ष्य है। जिसकी विश्रांति भोग-विलास में है वो कला बंधन रूप है। किन्तु जो कला परमतत्व की ओर ले जाती है वो ही कला सच्ची कला है।

भारतीय कला भारत वर्ष के आचार-विचार, कर्म-धर्म, ज्ञान-तत्वज्ञान और संस्कृति-संस्कार का दर्पण है। भारतीय जन-जीवन की पुष्कल परिभाषा कला के माध्यम से हुई है। यहाँ के लोगों का रहन-सहन कैसा था, उनके भाव क्या थे, देव-तत्व के विषय में उन्होने क्या सोचा था, उनकी पूजा-विधि-पद्धति कैसी थी, इसका संपूर्ण लेखा-जोखा भारतीय कला में सुरक्षित है। वास्तु, शिल्प, मूर्ति, चित्र, कांस्य प्रतिमा, मृन्मयी प्रतिमा, दन्तकर्म, काष्ठकर्म, मणिकर्म, स्वर्ण-रजतकर्म आदि के रूप में भारतीय कला की सामग्री प्रभूत मात्र में पाई जाती है। देश के प्रत्येक भाग में कला के निर्माण की ध्वनि सुनाई पड़ती है। एक युग से दूसरे युग में कलात्मक निर्माण के केन्द्र दिशा-दिशाओं में छिटकते रहे। किन्तु यह विविध सामग्री समुदित रूप से समस्त देश की कला धारा के ही अंतर्गत है।

भारतीय कला का तिथि क्रम

भारतीय कला का तिथि क्रम महाविस्तृत है। इसका आरंभ सिंधु उपत्यका में तृतीय सहस्राब्दी ईसवी पूर्व से होता है और लगभग पाँच सहस्त्र वर्षों तक इसका इतिहास पाया जाता है। इस तिथि क्रम का लगभग सुनिश्चित आधार इस प्रकार है—

1. सिंधु सभ्यता की कला – लगभग 2500 – 1500 ई.पू.
2. वैदिक सभ्यता—लगभग 2000 – 1000 ई.पू.
3. महाजनपद युग—लगभग 1200 – 600 ई.पू.
4. शैशुनाग नन्द युग—लगभग 600 – 323 ई.पू.
5. मौर्य युग—लगभग 325 – 184 ई.पू.
6. शुंग काल—लगभग 184 – 72 ई.पू.
7. काण्व वंश—लगभग 72 – 27 ई.पू.
8. वाह्लीक—यवन और मद्रक – यवन लगभग 250 – 150 ई.पू.
9. क्षहरात—शक लगभग प्रथम शती ई.पू. 390 ई.
10. सातवाहक वंश लगभग 200 ई.पू. 200 ई.
11. शक-कुषाण लगभग 80 ई.पू. दूसरी शती ई.
12. आन्ध्र देश का इक्ष्वकु वंश लगभग तीसरी शती ई.
13. गुप्त युग लगभग 319 ई. 600 ई.
14. चाणक्य युग लगभग 550 ई. 642 ई.
15. राष्ट्रकूट युग लगभग 753 ई. 973 ई.
16. पल्लव युग लगभग 699 ई. 750 ई.
17. चोल युग लगभग 900 ई. 1053 ई.
18. पाण्ड्य युग लगभग 1251 ई. 1310 ई.
19. होयसल वंश लगभग 12वीं – 13वीं शती
20. विजय नगर वंश लगभग 1336 – 1565 ई.
21. उड़ीसा के गंग और केसरी वंश—लगभग 9वीं से 13वीं शती
22. गुर्जर प्रतिहर वंश लगभग 750 – 950 ई.
23. चन्देल वंश 900 – 1000 ई.
24. गहड़वाल वंश 1085 – 1200 ई.
25. सोलंकी वंश 765 – 1200 ई. [5]

कला का काल निर्धारण

वस्तुओं का काल निर्धारण प्राय: उत्कीर्ण लेखों के आधार पर किया जाता है। जैसे स्तूप, मंदिर, शिलापट्ट या मंदिर की चौकी पर उत्कीर्ण लेख संबंधी सामग्री के काल की सूचना देता है। इस साक्षी के अभाव में शैली ही समय का संदेश देती है। पुरातत्व की खुदाई में प्राप्त सामग्री जैसे लेख, मुद्रा, मृत्पात्र, खिलौना आदि की पूर्वापरीय स्तरों के आधार पर जाँच करा उनका समय निश्चित कराते है। कलासामग्री के बहिरंग अध्ययन का उद्देश्य उसकी ऐतिहासिक और संस्कृतिक पृष्ठभूमि का अवधारण करना है जिसके लिए प्राप्तिस्थान, समय शैली इन तीनों के परिचय की अवश्यक्ता होती है।

कला के चार अंग

भारतीय सौंदर्यशास्त्र के अनुसार कला और काव्य के मुख्यत: चार तत्व या अंग माने गए है—1. रस, 2. अर्थ, 3. छंद और 4. शब्द या रूप।

रस—रस कला की आत्मा है। यह वह अध्यात्म गुण है जिस में कृति का स्थायी मूल्य निहित रहता है। इसे मौलिक, आवश्यक और अतर्क्य दिव्य गुण कहना चाहिए जो प्रत्येक सच्ची कलाकृति में पाया जाता है। मनुष्य का मन भावों का समुद्र है। भावों के समष्टि से ही रस का उदय होता है। मनुष्य के मन में जो नाना भाव जन्म लेते हैं उन्हें ही कला ध्वरा व्यक्त किया जाता है। कलाकार सर्वप्रथम अपने मानस में रस या भवविशेष की आराधना करता है और फिर शब्द या रूप के ध्वरा स्थूल या इन्द्रयग्राही मध्यम से व्यक्त करते है।

अर्थ— मन में रस का स्मरण होने पर कलाकार उस अर्थ या विषय को चुनते हैं जिसके द्वारा रस या भाव स्फुटित होते हैं। अर्थ का अभिप्रया वर्ण या आलेख्यगत विषय से है। भारतीय कला की अर्थसंपत्ति के अन्तर्गत नाना देव और देवियों का विस्तार है जो विश्व की दिव्य और भौतिक शक्तियों के प्रतीक हैं। जैसे बुद्ध, महावीर आदि महापुरुष, इन्द्र, शिव, विष्णु आदि देव प्रकाश, उसके विपरीत वृत, त्रिपुरासुर आदि असत् या अंधकार के प्रतीक हैं। अर्थ ही कला का सच्चा चक्षु है। अर्थ की जिज्ञासा हमें कला के प्रतिकात्मक स्वरूप के समीप ले जाती है।

छंद—पुराणों में कहा है की विश्व की रचना छन्दज सृष्टि है। इसके मूल में एक विराट् छन्द, ताल, लय या मात्रा है। उसी छन्द से सौंदर्यतत्व के लिए आवश्यक सामंजस्य और संपुंजन, संतुलन एवं संगीत का निर्धारण किया जाता है। अतएव भारतीय कला का आवश्यक अंग तालमान है। विश्व की प्रत्येक वस्तु प्रमाण से सुनियात है। वही कलाकार के लिए प्रमाण या नमूना बनती है। उसे वह ध्यान की शक्ति से चित्त में उतारता है और फिर अंकन, लेखन या वर्णन में लाता है।

रूप या शब्द—कला का चौथा अंग भाव को भौतिक धरातल पर लाना है। इसे काव्य के लिए शब्द और कला के लिए रूप कहते हैं। शिल्प, चित्र, वास्तु को व्यक्त करने के माध्यम अलग हैं। किन्तु सब भावों के मूर्त रूप हैं। उनकी भाषा प्रत्यक्ष होती हैं और वे इन्द्रियों के माध्यम से मन पर प्रभाव डालते हैं।

मानव जीवन के घड़तर में उपयोगी विविध कलाओं की सूचिओं शुक्रनीतिसार वात्सयायन मुनि कृत 'काम सूत्र' में कला के चौसठ प्रकारों का वर्णन किया गया हैं। बौद्ध ग्रंथों में कला के चौरासी प्रकार, जैन ग्रंथों में कला के बहत्तर प्रकार और वेदों-उपनिषद में चौसठ प्रकार की कलाओं का वर्णन मिलता हैं। शास्त्रों मे वर्णित चौसठ कलाओं का वर्णन कुछ इस तरह से हैं—

	चौसठ प्रकार की कला	अर्थ
1.	गीतम्	गीत
2.	वाद्यम्	वाद्य
3.	नृत्यम्	नृत्य
4.	नाट्यम्	नाट्य
5.	आलेखयम्	चित्र बनाना
6.	विशेषकच्छेध्यम्	तिलकदानी बनाना
7.	तण्डुलकुसुमबलिविकार:	फूल (पुष्प) और चावल से चौक पुराना (रंगोली बनान)
8.	पुष्पस्तरणम्	फुलों (पुष्प) की सेज (बैठक) बनाना
9.	दशनवासनाङरागा:	दाँत और अंगों को रंगना (टेटु बनाना)
10.	मणिभूमिककर्म	ऋतु के अनुकूल घर बनाना
11.	उदकवाद्यम्	जलतरंग का वादन करना
12.	उदकघात:	गुलबदनी का उपयोग करने की विद्या
13.	शयनरचनम्	पलंग बिछने की कला
14.	चित्रयोगा:	अवस्था परिवर्तन अर्थात् युवन को बुढ़ा और बुढ़ा को युवन बनाना
15.	माल्यग्रथनविकल्पा:	माला बनाना
16.	केशशेखरापिड़योजनम्	बालो में फूल (पुष्प) लगाना
17.	नेपथ्ययोगा:	देशकाल के मुताबिक वस्त्र, आभूषण आदि पहनना
18.	कर्णपत्रमड़गा:	कानों में पहनने के लिए कर्णफूल (पुष्प) बनाना
19.	गन्धयुक्ति:	सुगंधित पदार्थ
20.	भूषणयोजनम्	आभूषण पहनने की रीत
21.	ऐन्द्रजालम्	जादूगरी का खेल करना
22.	कौचूमारयोगा:	कुरूप को सुंदर बनाना
23.	हास्टलघवम्	हाथों की चालाकी
24.	चित्रशाकपूपभक्ष्यक्रिया	कई प्रकार की सब्जियाँ और मालपूआ बनाना
25.	पानकरसरगासवयोजनम्	प्रपाणक, आसव आदि पेय (रस)बनाने की कला
26.	सूचिवापककर्माणी	पवित्र कर्म
27.	सूत्रक्रीड़ा	सिलाई करना या हाथ के सूत्र से नाना प्रकार की आकृतियों बनाना
28.	प्रहेलिका	दूसरे को बोलने नहीं देना , अवरोध खड़ा करना
29.	प्रतिमाला	अंताक्षरी करना
30.	दुत्वचक्रयोगा	कठिन पदों और शब्दों के अर्थ बताना
31.	पुस्तकवाचनम्	स्पष्टता से पुस्तक पढ़ना
32.	नटिकख्यायिकदर्शनम्	नाटक कों देखना और बताना
33.	काव्यसमस्यापूरणम	काव्य की पदापूर्ति करना
34.	पटिट्कावेत्रबाणविकल्प	वेंल और वांस का शिल्प
35.	तर्कुकर्माणि	नक्काशी काम (सुथरी काम) करना
36.	तक्षणम्	सोना-चाँदी और रत्नों को पहचानना
37.	वास्तुविध्या	घर बनाना
38.	रुप्यरत्नपरीक्षा	रत्नों को जाचना
39.	धातुवाद:	कच्ची धातु को साफ करना

40.	मणिरागज्ञानम्	रत्नों के रंग जानना
41.	आकरज्ञानम्	खनिजीय तत्वों को जानना
42.	वृक्षायुर्वेदयोगा:	वृक्षों का ज्ञान और चिकित्सा को जानना
43.	मेषकुकक्टुलावकयुद्धविधि	मेष-मुर्गा आदि पशु-पक्षियों को लड़ाना
44.	शूकसरीकपलायनम्ना	पोपट और मना को पढ़ना
45.	उत्सादनम्	शरीर का मसाज करना
46.	केशमार्जनकौशलम्	बाल बनाना और बालों में तेल लगाना
47.	अक्षरमुष्टिकाकशनम्	संकेत भाषा का ज्ञान
48.	म्लेच्छतकविकल्प	विदेशी भाषा का ज्ञान
49.	देशभाषाज्ञानम्	प्राकृतिक (देशी) बोलियों(भाषाओं) का ज्ञान
50.	पुष्पकटिकनिमित्तज्ञानम्	पुष्पों से गाड़ी आदि खिलौने बनाना या सजाना
51.	यंत्रमातृका	यंत्र निर्माण करना
52.	धारणमातृका	स्मरण शक्ति को बढ़ाना
53.	सम्पाठ्यम्	काव्य पाठ की कला
54.	मानसीकव्यक्रिया	शीघ्र काव्य बनाकर कहना
55.	क्रियाकल्पा:	काव्यालंकार का ज्ञान
56.	छलितकयोगा:	छल या धूर्तता करना
57.	अभिधानकोषच्छ्न्दोज्ञानम्	छंदो का ज्ञान
58.	वस्त्रगोपननी	वस्त्रों की रक्षा करने का ज्ञान
59.	धूतविशेष:	धुत क्रीड़ा का ज्ञान
60.	आकर्षक्रीडा	पासा फेकना
61.	बालकक्रीड़नकनी	बालकों की विभिन्न क्रीड़ाओं का ज्ञान
62.	वैनायिकीनां विध्यानां ज्ञानम्	विनय,शिष्टाचार आदि करना
63.	वैजयिकीनां विध्यानां ज्ञानम्	विजय प्राप्त करने का ज्ञान
64.	वैतायिकीनां विध्यानां ज्ञानम् [6]	रोग को पहचानना, न्याय करना,चोरी करना आदि

उपरोक्त चौसठ कलाओं का वर्णन शास्त्रों में किया गया है। कला का एक दूसरा भी रूप है। कई विद्वान मानते हैं की किसी व्यापार को सर्वोत्तम ढंग से संपन्न करना भी एक कला है। प्रयोगात्मक कला के लिए प्रमाण, औचित्य मिक़दार, हिसाब और अंग्रेजी शब्द 'प्रपोर्शन' प्रयुक्त होते हैं। किसी कार्य में प्रमाण या मिक़दार अथवा प्रपोर्शन होना ही कला है। इसके अभवा में रूप के विपरीत रचना विरूप हो जायगी। वास्तव में सारी रमणीयता का, सारे सौंदर्य और रस का मूलतत्व ही यही समानता, प्रमाण या प्रपोर्शन है। कला को समान्यत: ललित कलाओं के रूप में अधिक जाना पहचाना व सराहा जाता है। ललित कला के अंतर्गत चित्रकला, शिल्पकाल, निर्माणकला, साहित्यकला और संगीत कला को गिना जाता है। जब प्रमाण, मिक़दार या प्रपोर्शन का प्रयोग केवल उसी को देखने के लिए, उसी की अभिव्यक्ति के लिए तथा उसी के प्रस्फुटिकरण के लिए किया जाता है तो उसे ललित कला कहा जाता है। उस कला का साध्य (लक्ष्य) है केवल उस औचित्यपूर्ण प्रमाण (प्रपोर्शन) की अभिव्यक्ति। वह कला स्वयं में ही पूर्ण आनंदपूरक है, अत: साध्य है, किसी अन्य साध्य की साधना नहीं। इस औचित्यपूर्ण प्रमाण (प्रपोर्शन) का ज्ञान करने के लिए ललित कला का होना आवश्यक है। यही व दरकार है जो कला का संबंध शिक्षा-संस्कार से जोड़ देती है।

अतएव ललितकला के सम्यक् ज्ञान, अध्ययन, मनन एवं रसास्वादन को मानव विकास के लिए सर्वश्रेष्ठ साधना माना जाता है। आज का मानव भौतिकवादी अधिक हो गया है। उसके पास कला जगत् में पैंठकर आध्यात्मिक रसास्वाद लेने का समय ही नहीं हैं इसीलिए आज हमारा जीवन प्राचीन कला की उपेक्षा अधिक नीरस एवं अधिक स्वार्थी हो गया है। अब समय आ गया है कि हमें हमारी कलाओं को प्रोत्साहित करनी होगी। कलाकारों की सराहना करनी होगी जिससे समाज में एक नयी ऊर्जा का संचार हो और समाज अपनी सांस्कृतिक विरासत को भविष्य के लिये सुरक्षित करके आने वाली पिढी को विकृतिओं से बचाकर एक नये भारत के निर्माण में अपना महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करे।

पाद-टिप्पणियाँ

1. भारतीय संगीत एवं मनोविज्ञान, वसुधा कुलकर्णी, रजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर प्रकाशन, पृ. 17
2. रूपप्रद कला, मार्कण्ड भट्ट, एम. एस. यूनिवर्सिटी, बड़ौदा प्रकाशन, पृ. 200,191
3. हिंदुस्तानी संगीत शास्त्र भाग-1, भागवत शरण शर्मा, संगीत मंदिर खुरजा उ.प्र. प्रकाशन, पृ. 4
4. रूपप्रद कला, मार्कण्ड भट्ट, एम. एस. यूनिवर्सिटी, बड़ौदा, प्रकाशन, पृ. 97
5. कला कुंज भारती मासिक, संस्कृति का दर्पण लेख , वसुदेवशरण अग्रवाल, संस्कार भारती, लखनऊ प्रकाशन, नवम्बर 2003, पृ. 6
6. कला कुंज भारती मासिक, संस्कार भारती, लखनऊ प्रकाशन, नवम्बर 2003, पृ. 47

संदर्भ ग्रंथ सूची

भारतीय संगीत एवं मनोविज्ञान, वसुधा कुलकर्णी, रजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर प्रकाशन, 1991

हिंदुस्तानी संगीत शास्त्र भाग-1-3, भागवत शरण शर्मा, संगीत मंदिर खुरजा उ.प्र. प्रकाशन, 1987

रूपप्रद कला, मार्कण्ड भट्ट, एम. एस. यूनिवर्सिटी - बड़ौदा, प्रकाशन, 1980

कला कुंज भारती मासिक, संस्कार भारती, लखनऊ प्रकाशन, नवम्बर 2003

संगीत शोध लेख अंक, संगीत कार्यालय हाथरस प्रकाशन (उ.प्र.), जनवरी-फरवरी 1995

विश्व संगीत अंक, संगीत कार्यालय हाथरस प्रकाशन (उ.प्र.), जनवरी-फरवरी 1985

सहस्त्राब्दी संगीत अंक, संगीत कार्यालय हाथरस प्रकाशन (उ.प्र.), जनवरी-फरवरी 2001

कला और साहित्य, गोवर्धन शर्मा, ज्ञान लोक प्रकाशन, अमरावती, अगस्त 1959